अकेले कंठ की पुकार (1958)

अजित कुमार

अकेले कंठ की पुकार (1958)

पिछले वर्षों में अनेक नये कवियों ने हिन्दी पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है- किसीने विशिष्ट बनकर, किसीने विचित्र होकर, किसीने शिल्प को माँजकर, किसीने भाषा को सँवारकर और अधिकांश ने शॉक पहुँचाकर। लेकिन एक स्वर ऐसा भी है जो अपनी सहजता से ही चमत्कृत करता रहा है, सरलता ही जिसका सबसे अधिक सक्षम प्रयोग रहा है और सीधेपन को ही जिसने श्रेष्ठ शिल्प माना है। हिंदी कविता की पंरपरा का अंग होते हुए भी यह स्वर शत-प्रतिशत नया है। नई कविता के साथ जिस नए पाठक वर्ग का बोध आज होने लगा है उसके अंतर्स्वर से मिला हुआ और अलग से भी पहचान में आने वाला यह स्वर अजितकुमार का ही है। उसी स्वर का संगम है : कवि का यह प्रथम संग्रह- 'अकेले कंठ की पुकार'।

अकेले कंठ की पुकार

गीत जो मैंने रचे हैं
वे सुनाने को बचे हैं।
क्योंकि-
नूतन ज़िन्दगी लाने,
नई दुनिया बसाने के लिए
मेरा अकेला कंठ-स्वर काफ़ी नहीं है।
-इस तरह का भाव मुझको रोकता है
शून्य, निर्जन पथ, अकेलापन :
सभी कुछ अजनबी बन-
मुखरता मेरी न सुनता...टोकता है।

इसलिए मुझको न पथ के बीच छोड़ो
बेरुखी से मुँह न मोड़ो,
हो न जाऊँ बेसहारे,
इसलिए तुम भूलकर वैषम्य सारे-
ताल-सुर-लय का नया सम्बन्ध जोड़ो।
ओ प्रगतिपन्थी ! ज़रा अपने क़दम इस ओर मोड़ो ।

राग आलापो, बजाओ साज़,
कुछ ऊँची करो आवाज़-
मेरा साथ दो।
यह दोस्ती का हाथ लो !

फिर मैं तुम्हारे गीत गाऊँ,
और तुम मेरे:

कि जिससे रात जल्दी कट सके,
यह रास्ता कुछ घट सके।
हम जानते हैं :
विहग-दल तक साथ देंगे
भोर होते ही, उजेरे...मुँह अँधेरे ।

दो बातें और एक तर्क

मानता हूँ :
हर नया गाना सदा सस्वर नहीं होता,
अनश्वर भी नहीं होता-
अभी उमड़ा.. घिरा... गूँजा... मिटा तत्काल...
जैसे बुलबुले... सपने... घिरौंदे... इन्द्रजा... ल।

इस तरह के गीत अपनाना,
सुनाना दूसरों को और खुद गाना-
तुम्हें अच्छा नहीं मालूम होता, किन्तु
यह सोचो कि जो तुमने सुने थे गीत,
जिनके रचे जाने, गुनगुनाने की क्रिया में
गए कितने कल्प, युग, पल बीत :
वे भी तो नए थे एक दिन
ताज़े, कुँवारे फूल की ही भाँति !

तुमने था गले उनको लगाया, और
दुलराया, सजाया, हार प्राणों का बनाया,

नहीं ठुकराया, हुए यद्यपि मलिन वे गीत।

और फिर यह आज का गाना कि
महफ़िल भी जमी है,
ताल, सुर, लय है, हर इक शै है,
नहीं कोई कमी है।
सिर्फ़ इतना है कि तुम भी

बीच में टूटी हुई झंकार को जोड़ो,
अधूरा राग मत छोड़ो,
कि तुम भी गुनगुनाओ,
बीच में आवाज़ यदि डूबे, उसे ऊपर उठाओ :
राग जाएँ दिशाओं में बिखर,
पथ हो जाय उज्ज्वल,
और उस पल
इस धरा पर स्वर्ग का गन्धर्व आए उतर :
बस इतनी प्रतीक्षा मुझे भी है, तुम्हें भी है।

और फिर यह बात भी सच है कि
ईश्वर का ठिकाना कुछ नहीं :
कब, किस दुखी अन्धे भिखारी, या पुजारी, या
बिचारी दीन बुढ़िया का रचाए वेश।
उस बहुरूपिए भगवान के अस्तित्व से अनभिज्ञ रहकर
हम न जाने किस समय, किस तरह आएँ पेश :
यह भय है।